संपादकीय
ज्ञान की भारतीय दृष्टि और वैश्विक अनुसंधान का भविष्य

"आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।"

(ऋग्वेद 1.89.1)

ज्ञान का स्वभाव सीमाओं में बँधना नहीं, बल्कि सीमाओं का अतिक्रमण करना है। जब विचार स्वतंत्र होते हैं, तब सभ्यताएँ विकसित होती हैं; जब अनुसंधान स्वतंत्र होता है, तब ज्ञान का विस्तार होता है; और जब ज्ञान मानवीय मूल्यों से जुड़ता है, तभी वह लोकमंगल का आधार बनता है। भारतीय ज्ञान-परंपरा का मूल दर्शन इसी सार्वभौमिक दृष्टि पर आधारित है, जहाँ सत्य की खोज किसी एक मत, पद्धति या विचारधारा की परिधि में सीमित नहीं, बल्कि निरंतर संवाद, परीक्षण, अनुभव और आत्मचिंतन की प्रक्रिया से विकसित होती है।

आज मानव सभ्यता एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुकी है जहाँ ज्ञान का उत्पादन अभूतपूर्व गति से हो रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, डिजिटल मानविकी, क्वांटम कंप्यूटिंग, जैव-प्रौद्योगिकी और डेटा विज्ञान ने शोध की कार्यप्रणाली को परिवर्तित कर दिया है। दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन, वैश्विक असमानता, सांस्कृतिक विखंडन, मानसिक स्वास्थ्य, पर्यावरणीय संकट और सामाजिक न्याय जैसी चुनौतियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि केवल तकनीकी प्रगति पर्याप्त नहीं है; उसके साथ मानवीय संवेदना, नैतिक विवेक और सांस्कृतिक चेतना भी अनिवार्य हैं। यही वह बिंदु है जहाँ भारतीय ज्ञान-परंपरा समकालीन वैश्विक विमर्श को नई दिशा देने की क्षमता रखती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति–2020 भारत की शिक्षा-दृष्टि में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का संकेत देती है। यह नीति शिक्षा को केवल सूचना-आधारित प्रक्रिया न मानकर ज्ञान-सृजन, नवाचार, आलोचनात्मक चिंतन, अनुसंधान, भारतीय भाषाओं, स्थानीय ज्ञान तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ती है। इस नीति की वास्तविक सफलता तभी संभव है जब विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में ऐसी शोध-संस्कृति विकसित हो जो मौलिकता, बहुविषयक दृष्टि, नैतिकता और समाजोपयोगिता को समान महत्त्व दे।

भारतीय ज्ञान-परंपरा का पुनर्पाठ आज केवल सांस्कृतिक पुनर्स्मरण का विषय नहीं, बल्कि ज्ञान के वैश्विक पुनर्संतुलन की आवश्यकता है। भारत ने सहस्राब्दियों पूर्व ज्ञान को समग्रता में देखने की जो परंपरा विकसित की वह वेदों से लेकर उपनिषदों तक, पाणिनि से आर्यभट तक, चरक और सुश्रुत से लेकर कौटिल्य तथा भरतमुनि तक वह आज भी अनेक समकालीन प्रश्नों के समाधान की प्रेरणा देती है। यह परंपरा हमें सिखाती है कि विज्ञान और संस्कृति, तर्क और अनुभव, प्रकृति और मानव, परंपरा और आधुनिकता ये विरोधी ध्रुव नहीं, बल्कि एक ही ज्ञान-यात्रा के विविध आयाम हैं।

इसी संदर्भ में ज्ञान के उपनिवेशमुक्त प्रतिमानों पर वैश्विक स्तर पर हो रहा विमर्श विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अब समय आ गया है कि भारत अपने ज्ञान-विमर्श को केवल संदर्भ सामग्री के रूप में नहीं, बल्कि सिद्धांत-निर्माण, वैचारिक प्रतिमान और नीति-निर्माण के स्तर पर भी स्थापित करे। भारतीय ज्ञान-परंपरा का वैज्ञानिक, आलोचनात्मक और प्रमाणाधारित पुनर्पाठ न केवल हमारी बौद्धिक आत्मनिर्भरता को सुदृढ़ करेगा, बल्कि वैश्विक ज्ञान-संवाद को भी अधिक बहुलतावादी और समावेशी बनाएगा।

वर्तमान शोध-संस्कृति में एक और महत्त्वपूर्ण प्रश्न अनुसंधान की विश्वसनीयता का है। अनुसंधान नैतिकता, अकादमिक सत्यनिष्ठा, मुक्त विज्ञान, मुक्त अभिगम, पारदर्शी समीक्षकीय प्रक्रिया, डेटा की

विश्वसनीयता तथा उत्तरदायी कृत्रिम बुद्धिमत्ता अब गुणवत्तापूर्ण शोध की अनिवार्य शर्तें बन चुकी हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता शोध की सहायक हो सकती है, उसका विकल्प नहीं। मौलिक चिंतन, आलोचनात्मक विवेक और मानवीय संवेदना आज भी किसी भी उत्कृष्ट अनुसंधान की आत्मा हैं।

ज्ञानविविधा शोध-पत्रिका का यह अंक व्यापक दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें प्रकाशित शोध-लेख भाषा, साहित्य, शिक्षा, इतिहास, दर्शन, समाजशास्त्र, संस्कृति, मीडिया तथा मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान के विविध क्षेत्रों में नए विमर्शों का उद्घाटन करते हैं। इन आलेखों में भारतीय ज्ञान-परंपरा की अंतर्दृष्टि, समकालीन अनुसंधान-पद्धतियों की वैज्ञानिकता तथा वैश्विक अकादमिक चिंतन की व्यापकता का संतुलित समन्वय दिखाई देता है। हमारा विश्वास है कि ज्ञान की वास्तविक प्रगति विविध विचारों के सह-अस्तित्व और रचनात्मक संवाद से ही संभव है।

एक शोध-पत्रिका का दायित्व केवल शोध-पत्रों का प्रकाशन नहीं, बल्कि शोध-संस्कृति का निर्माण भी है। संपादकीय प्रक्रिया का प्रत्येक चरण लेख चयन, समीक्षकीय निष्पक्षता, संदर्भों की प्रामाणिकता, भाषा की शुद्धता तथा अकादमिक पारदर्शिता ज्ञान की विश्वसनीयता का आधार बनता है। **ज्ञानविविधा** का प्रयास है कि यह पत्रिका शोधार्थियों, अध्यापकों और विद्वानों के लिए ऐसा मंच बने जहाँ मौलिक चिंतन को प्रोत्साहन मिले, विचारों का स्वस्थ संवाद विकसित हो और समाजोपयोगी अनुसंधान को प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

भारतीय चिंतन का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—**"सा विद्या या विमुक्तये।"** विद्या वही है जो मनुष्य को अज्ञान, पूर्वाग्रह और संकीर्णताओं से मुक्त कर व्यापक मानवीय चेतना की ओर ले जाए। मेरा विश्वास है कि शोध का वास्तविक उद्देश्य भी यही है—ऐसा ज्ञान सृजित करना जो मानवता को अधिक विवेकशील, अधिक संवेदनशील और अधिक उत्तरदायी बनाए।

इस अंक के प्रकाशन में सहयोग देने वाले सभी विद्वान लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल, परामर्शदाताओं तथा पाठकों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उनके सहयोग, विद्वत्ता और अकादमिक प्रतिबद्धता ने इस अंक को सार्थकता प्रदान की है।

“ज्ञान की वास्तविक सार्थकता उसके संचय में नहीं, उसके सदुपयोग में है। यदि हमारा अनुसंधान मानवता को अधिक न्यायपूर्ण, अधिक संवेदनशील और अधिक विवेकशील बनाने में सहायक सिद्ध होता है, तभी वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करता है। 'ज्ञानविविधा' इसी विश्वास के साथ भारतीय ज्ञान-परंपरा, आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि और वैश्विक अकादमिक उत्कृष्टता के मध्य एक सृजनात्मक सेतु बनने के लिए प्रतिबद्ध है।"

इसी विश्वास के साथ **ज्ञानविविधा** शोध-पत्रिका का यह अंक विद्वत् समाज को समर्पित है। आशा है कि इसमें प्रकाशित शोध-आलेख भारतीय ज्ञान-परंपरा और समकालीन वैश्विक अनुसंधान के मध्य सार्थक संवाद स्थापित करेंगे तथा अकादमिक उत्कृष्टता, अनुसंधान नैतिकता और ज्ञान-सृजन की संस्कृति को नई दिशा प्रदान करेंगे।

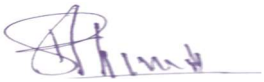

डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा
अतिथि संपादक